Pranavopasana: From the perspective of human consciousness
(प्रणवोपासना: मानव चेतना के दृष्टिकोण से)

Dr. Namrata Chauhan*; Sheetal Narvare**
*Assistant Professor, Department of Yoga and Naturopathy,
Sarala Birla University, Ranchi
**Student, Dev Sanskriti Vishwavidyalaya, Haridwar
namrata.chouhan154@gmail.com

DOI: 10.52984/yogarima1103

संक्षेपिका–

संसार में व्याप्त अनेक जीवों में से केवल मानव ही एक जीव है जो अपने लक्ष्य को समझकर उस पाने के लिए प्रयास कर सकने में सक्षम है। मानव के अतिरिक्त अन्य प्राणी की क्षमता केवल पेट पालने, प्रजनन करने तक ही सीमित है। जबकि मानव की क्षमताएँ असीम है, वह समझने, चिंतन करने, मुल्यांकन करने तथा अनगिनित उपलब्धियों को प्राप्त करने की सामर्थ्य को स्वयं के भीतर रखता है। इन सभी सामर्थ्य का मानव के पास होने का श्रेय मानव के चेतना को जाता है। भारतीय प्राचीन ग्रंथ वेदों, दर्शनों, स्मृतियों, पुराणों तथा उपनिषदों में मुक्त कंठ से चेतना को जाग्रम करने, उन्नत बनाने को कहा है तथा चेतना को सार रूप में अध्यात्म का विज्ञान के रूप में परिभाषित किया है तथा इस अध्यात्मिक उत्कर्ष के मार्ग पर प्रशस्त होने के लिए प्रयुक्त होने वाले उपायों श्रद्धा, भक्ति, आरती, आसन, योग में से एक सुगम उपाय प्रणव की उपासना के रूप में उभरकर आता है। प्रणव ईश्वर का ही अन्य नाम अर्थात ओंकार को कहा जाता है। प्रणव एक अनाहत नाद है, जिसकी वर्णात्मक अभिव्यक्ति ओम है। विभिन्न ग्रंथों में प्रणवोपासना के सांसारिक तथा आध्यात्मिक लाभों का वर्णन है जिनमें चेतना का उत्थान प्रमुख लाभ है। मानव चेतना को विकसित करने में प्रणवोपसना एक अहम भुमिका का निर्वहन करता है, इन दोनों का संबध अविच्छिन्न है।

प्रस्तावना

मानव चेतना को ही कर्ता तथा भोक्ता कहा गया है। मानव देह को दुर्लभ है क्योकि देह के साथ अनंततम कला कौशल, तत्वज्ञान आदि उसमें निहित होते है। अर्थात मनुष्य में असीमित संभावनाएँ जीवित रहती है और इन्हीं संभावनाओं के सदुपयोग से वह नरपशु के स्तर से उपर उठकर देवत्व को प्राप्त करने में सक्षम है। देवत्व उदय की संभावनाए प्रत्येक मानव की चेतना के अंतःकरण में स्थापित रहती है। अतः मनुष्य के जीवन का लक्ष्य, स्वयं में अविद्या तथा अहंभाव की परत से आच्छादित इन अदभूत चैतन्य शक्तियों को पहचान कर उनका सदुपयोग करना तथा मानव जन्म को सार्थक बनाना है। इस ओर अग्रसर होने में मनुष्य की पाशविक वृत्तियॉ, मानसिक वृत्तियॉ, प्रारब्ध, कर्म, संस्कार आदि अवरोध बनकर उभरते है तथा मानव चेतना में बीज रूप में व्याप्त असीम संभावनाओं को विकसित होने से रोकती है। परंतु इसे प्रणवोपासना तथा तत्वज्ञान के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। योग दर्शन में चेतना के विकास के लिए चित्त की वृत्तियों का निरोध आवश्यक बताया है तथा चित्त वृत्ति के निरोध के लिए अष्टांग योग का मार्ग सुझाया है।

मानव चेतना

चेतना लैटिन भाषा के दो शब्दों con+scier से बना है जिसका अर्थ ''बोध'' अर्थात ''जानना'' है। वर्तमान में चेतना

के अर्थ को बोध अथवा ज्ञान के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। इसी संदर्भ में डॉ. डेविड फ्रावले का मत है कि चेतना संसार की सबसे अदभूत वस्तु है जो सभी सीमाओं से परे है। श्रीमति एनी बेसेन्ट ने चेतना को परिभाषित करते हुए कहा है कि ''चेतना और जीवन दोनों आपस में संबंधित है चेतना के बिना जीवन और जीवन के बिना चेतना संभव नही है।'' अन्य अर्थो में जीवन को चेतना तथा चेतना को जीवन कहा जा सकता है। युगदृष्टा पं. श्रीराम शर्मा आचार्य जी चेतना के विषय में कहते है कि –''चेतना को तो चेतना ही अनुभव कर सकती है। चेतना को समझने का कोई यंत्र बना होगा तो वह चेतना ही होगा। आत्मा और परमात्मा को प्रयोगशालाओं में अब तक सिद्ध नही किया जा सका और वह भविष्य में भी न ही सिद्ध हो सकेगा।'' आईस्टीन ने सृष्टि का मूल तत्व चेतना को कहा है। मूल चेतना एकमात्र ब्रह्ममय ही है। वस्तुतः अन्य वस्तुएँ उसी से चैतन्यता को ग्रहण करती है।[1]

चेतना के अर्थ को बताते हुए डॉ. नागेन्द्र जी कहते है कि – ''चेतना वह सत्ता या शक्ति है जो ज्ञान का मूलाधार है और स्वयं अपरिभाष्य है। अंतःनिरीक्षण के द्वारा ही चेतना को परिष्कृत किया जा सकता हैं। बाह्य निरीक्षण से केवल चेतना की क्रियाओं से परिचय ही किया जा सकता है''[2]। चेतना की विशालता तथा जटिलता इतनी विस्तृत है कि वह मानव की समझ तथा मनोवैज्ञानिक की शोध से भी कोशों दुर प्रतीत होती है इसीलिए प्रसिद्ध विज्ञानवेत्ता ए. जी. केरन्स ने चेतना को रहस्यात्मक और वर्तमान के अणु विज्ञान की पहुँच से परे कहा है।[3] चेतना को विविध अर्थो में चैतन्य, वेदन, अनुभव, अन्तः, ज्ञान आदि के रूप में देखा जाता है।[4]योग वशिष्ठ में चेतना के विषय में वर्णन मिलता है कि जिस प्रकार जल में लहरों की चंचलता, जलते हुए दीपक में प्रकाश किरणों की स्फुरणा, अग्नि में चिंगारियॉ, चन्द्रमा में किरणे, वृक्ष में फूल पत्तियों की शोभा है, उसी प्रकार सृष्टि के अणु अणु में वही परम चेतना व्याप्त है।[5]

आचार्य शंकर का मानना है कि संसार में ऐसा कुछ भी नहीं है। जो चेतना से युक्त ना हो, और संसार में जड तत्व कुछ है ही नही अर्थात सब कुछ चेतना से युक्त ही है।[6] इससे भिन्न मनोवैज्ञानिक फ्रायड ने मानव चेतना को दो खंडों चेतन तथा अचेतन में विभाजित किया है। तथा कहा है मानव मन का केवल 10 प्रतिशत भाग ही चेतन है तथा शेष भाग अचेतन है।[7] कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि चेतन तथा अचेतन दोनों अवस्थाएँ एक ही है जब हम अचेतन को समझने लगते है तो वह ही चेतन बन जाता है। मनोवैज्ञानिक युंग ने चेतना को चित्त के रूप में स्वीकारा है।[8] इन पश्चिमी मनोवैज्ञानिको के मत को समग्र विचारधारा में देखते हुए भारतीय चिंतन पहले ही मानव चेतना को चेतना के ही पर्यायवाची शब्द चित्त के रूप में परिभाषित करता है तथा यहॉ चित्त अचेतन, अवचेतन, आत्म चेतन तथा पराचेतन चारों ही स्तरों को एक साथ दर्शाता है।[9]

चेतना के स्तर

माण्डुक्य उपनिषद् में चेतना की चार अवस्थाओं जाग्रत, स्वप्न, सूषूप्ति तथा तुरीय की व्याख्या है, तथा ये अवस्थाएँ प्रणव रूपी ओंकार के चार पाद अकार, उकार, मकार तथा अव्यक्त है। चेतना की इन अवस्थाओं के अधिपति पुरूष क्रमशः वैश्वानर, तैजस, प्राज्ञ तथा अव्यक्त आत्मा है। वैश्वानर को स्थूल का भोक्ता कहा गया है, तैजस को एकांत और ज्ञान का भोक्ता कहा गया है, प्राज्ञ को सर्वाधिक चेतना वाला तथा आनंद का भोक्ता कहा है जबकि आत्मा इन सब भोग से परे है।[10] प्रणव की इन चार पादों को साधकर अर्थात इन मात्राओं को साधनात्मक रूप से अपनाकर, चेतना की चारों अवस्थाओं को विकसित किया जा सकता है।

चेतना के तीन स्तरों में चेतन, अवचेतन तथा अचेतन को माना गया हैं। चेतन के अंतर्गत व्यक्ति की सोच–समझ, विचार, अहंकार भाव तथा कार्य आते है। अवचेतन में उन तथ्यों तथा बातों को रखा गया है जिसका ज्ञान व्यक्ति को

[1] ब्रहमसूत्र 1/1/2 शंकर भाष्य

[2] मानविकी पारिभाषिक कोश दर्शनखंड पृ 50

[3] अखंड ज्योति, मानव चेतना और उसकी जटिल गुत्थियॉ, नवम्बर 2001, पृ सं. 06

[4] Dictionary English and Sanskrit- S/R M. Monier Williams

[5] योग वशिष्ठ 3/84/20–21

[6] पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाडगमय, खंड 24, भविष्य का धर्म – वैज्ञानिक धर्म

[7] सुरेश वर्णवाल , योग और मानसिक स्वास्थय, पृ 22

[8] C.G. Jung, Analytical Psychology: its theory& Practice.

[9] David Frawley, Condititioned Conciousness, Ayurveda and the Mind, pg 76-77

[10] सुभाष विद्यालंकार, योग उपपिषद, पृसं– 393

वर्तमान में नहीं होता परंतु समय आने पर तुरंत याद आ जाता है। अचेतन वह अवस्था है जिनमें वे बाते होती है जिन्हें याद करना मुश्किल होता है परंतु विशेष प्रक्रिया के माध्यम से उन्हें याद कराया जा सकता है।

प्रणव तथा चेतना का संबंध

पारमार्थिक दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि चेतन तत्व ही स्फोट है, तथा यह स्फोट ध्वनि ओंकार की ध्वनि है। दो प्रकार की ध्वनि आहत तथा अनाहत में से ओंकार अर्थात प्रणव की ध्वनि ही नित्य चेतन तत्व है। वर्तमान में मानवीय चेतना का अध्ययन करना तथा उसे परिष्कृत करने की सबसे अधिक आवश्यकता दिखाई पडती है। इसका कारण यह है कि वर्तमान में मनुष्य की समस्याएँ भौतिक पदार्थों अथवा भौतिक परिस्थितियॉ न होकर स्वयं की विकृत चेतना ही है। कुछ विद्वानों के अनुसार वर्तमान युग को ''मानव चेतना का संकट'' कहा है। एक शोध के अनुसार 70–80 प्रतिशत रोगों का कारण उसकी आंतरिक चेतना का विघटन ही है। एक अन्य शोध में कहा गया है कि प्रत्येक 12 में से 5 व्यक्ति को मनोवैज्ञानिकों के परामर्श की आवश्यकता होती है। एक शोध के अनुसार 70–80 प्रतिशत रोग मानव की आंतरिक चेतना के विघटन, बिखराव, अपरिष्कृत होने के कारण ही है। चाहे लोकतंत्र हो, समाजवाद हो, विघटन हो अथवा विश्व में तनाव की स्थिति हो सभी के कारण के मूल में चेतना का विघटन ही देखा जाता है। मानव ही परिवार, समाज, राष्ट्र की आधारभूत इकाई है, उसकी आंतरिक चेतना में बिखराव होगा तो बाहय चेतना पर भी उसका विपरीत प्रभाव देखने को मिलता है। इस बिखराव को समेटने के लिए मानव मनीषा निरंतर प्रयासशील भी है कि वर्तमान में जो श्रद्धा और तर्क का महायुद्ध, भाव और बुद्धि के द्वन्द्व को समाप्त किया जा सके।

विद्वानों का मत है कि मानव शरीर दो तत्वों जड तथा चेतन से मिलकर बना है। जिसमें जड से तात्पर्य पंचमहाभूत से तथा चेतन तत्व का संबंध आत्मा से हैं। जड तत्व का कार्य भौतिक जगत से साधन उपक्रमों को एकत्रित करना है जबकि चेतना का कार्य मानव की प्रगति और समृद्धि को विकसित करना है। चेतना के अभाव में किसी भी प्राणी का जीवन संभव नही। मनोविज्ञान के अनुसार व्यक्ति का देखना, सूनना, समझना, चिंतन करना, सुख–दुख का अनुभुति करना आदि चेतना को परिभाषित करते है। मानव चेतना ज्ञानात्मक, भावनात्मक, तथा क्रियात्मक रूप में होती है जिसे दार्शनिक दृष्टि से सच्चिदानंद रूप कहा गया है।

चेतना के विकास के बगैर मनुष्य को एक निम्न कोटि का पशु माना जा सकता है। चेतना के बिना हम सुप्त तथा मुर्छित लोगों के समान निर्थरक ही जीते रहते है। चेतना का विकास तथा उसके आयामों को जानना ही ही हमारे जीवन का महत्तम लक्ष्य होना चाहिए। मानव चेतना को संपूर्ण रूप से जानने के लिए दार्शनिकता एवं वैज्ञानिकता के समन्वय की आवश्यकता है, इन दोनों में से किसी एक के अभाव के बिना मानव चेतना का अनुसंधान असंभव ही है। मानव चेतना की समझ को विकसित करने के लिए ओंकार की साधना एक सार्थक उपाय हैं। प्रायः सभी ग्रंथों, वेद, पुराण, उपनिषद्, स्मृतियों में चेतना के विभिन्न सिद्धांतों को बताते हुए उनको प्राप्त करने के मार्ग को भी प्रदर्शित किया है। सभी ग्रंथों के मूल में चेतना तथा उसे जाग्रत करना ही है। मानव चेतना को जाग्रत करना अत्यंत आवश्यक है और यह प्रणवोपासना द्वारा ही संभव है।

चेतना को उसकी संकट की अवस्था से बाहर निकालने के लिए उसका समग्र रूप से अध्ययन की आवश्यकता है। समग्र अध्ययन ही समस्याओं के मूल कारणों को समझकर उसके समाधान की दिशा में सार्थक प्रयास करने में करने में सक्षम हो सकेगा। तथा यह अध्ययन केवल वैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर ही सीमित ना रहकर आध्यात्मिक दृष्टिकोण से करने की आवश्यकता होगी। आध्यात्मिक दृष्टिकोण ही मानवीय चेतना के विघटन को रोक सकने में प्रभावी भुमिका का निर्वहन कर सकता है।

चेतना के विकास के सूत्र के रूप में सत्यनिष्ठा, करूणा, साहस, दृढ संकल्प, ध्यानपूर्णता, आत्मानुशासन, उददेश्यपूर्णता, आत्मनिरीक्षण, विवेकपूर्णता और स्वस्थ शरीर को बताया है। माना गया है कि एक कमजोर और रूग्न शरीर में चेतना का आरोहण होना कठिन है अतः उपरोक्त सूत्रों का होना आवश्यक है। चेतना के विकास के लिए आवश्यक है कि हम सजग रहे और प्रणव की उपासना व्यक्ति को सजगता की ओर लेकर जाने का अचुक उपाय है।

तस्य वाचकः प्रणवः।।[11]

अर्थात उस ईश्वर का नाम अर्थात बोधक तत्व ही ओम है। पातंजल योग सूत्र में प्रणव को ईश्वर के वाक् के रूप में व्यक्त किया है। जिस प्रकार वाच्य तथा वाचक का संबंध अविच्छेदनीय है उसी प्रकार समष्टि तथा व्यक्ति की चेतना से भी प्रणव का संबंध अटुट है। चेतना तथा उसे परिष्कृत करने का साधन रूप में प्रणव और मानव चेतना के संबंध को अनादि कहा गया है।

ओंकार, समस्त जीवों की चेतना की प्रथम अवस्था जाग्रत में अकार रूप में उनके नेत्रों में निवास करता है, द्वितीय अवस्था स्वप्न में उकार रूप में कंठ में तथा सुषुप्ति अवस्था में मकार के रूप में हृदय प्रदेश में निवास करता है।[12]

[11] पा यो सूत्र 1/27

[12] अकारो जाग्रति नेत्रे वर्तते सर्वजन्तुषु। उकारः कण्ठतः स्वप्ने मकारो हृदि सुप्तितः।।74।।योगचुडामणि उपनिषद्

त्रिशिखब्राह्मण उपनिषद् में भी चेतना की चार अवस्थाओं जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय की शरीर में स्थिति को क्रमशः नाभि से हृदय, हृदय से कंठ, कंठ से तालु तथा ब्रह्मरंध्र में स्थान माना है।[13] मुण्डकोपनिषद् में भी चेतना के चार चरणों को ओंकार के चार मात्राओं के तुल्य बताया है।[14]

पञ्चावस्थाः

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितुरीयतुरीयातीताः।

मण्डल ब्राह्मण उपनिषद में भी प्रणव की पॉच अवस्थाओं के रूप में चेतना की ही अवस्थाएँ वर्णित की है और यह पॉच अवस्थाएँ जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय तथा तुरीयातीत कही गई है।[15] पैंगलोपनिषद में प्रणव की पॉच अवस्थाएँ जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, मुर्छा और मरण के रूप में बतायी है। ये अवस्थाएँ मण्डल ब्राह्मण उपनिषद् में वर्णित अवस्थाओं से मेल खाती है परंतु यहॉ तुरीय तथा तुरीयातीत अवस्था का नामांतर मुर्छा तथा मरण के रूप में है। तथा इन अवस्थाओं के विकास से होने वाले लाभों को भी सांसारिक तथा आध्यात्मिक उपलब्धियों को भी बताते हुए कहा है कि इनकी उपासना करने वाला साधक पाप रूपी पंक में उसी प्रकार लिप्त नही होता जिस प्रकार कमल के पत्र पर जल लिप्त नही होता।

भारतीय संस्कृति के अमुल्य ग्रंथों में वर्णित अनेक विद्याओं में से मंत्र विद्या की श्रेष्ठता का तथा विभिन्न मंत्रों में प्रणव मंत्र की श्रेष्ठता को बताया है। माना जाता है कि ब्रह्मंड की उत्पत्ति नाद अर्थात ओम से हुई और उस सृष्टि के मूल में ब्राह्मी चेतना के रूप में शब्द शक्ति ही विद्यमान है। प्रणव की ध्वनि अत्यंत सुक्ष्म है अतः उसका मुख से उच्चारण किया जा सकना अत्यंत कठिन है या असंभव है। अतः प्रणव के गौण रूप अर्थात त्रयाक्षर मंत्र अ,उ,म ओंकार का ही उच्चारण किया जाता है।

ओम की सर्वव्यापकता को सभी ग्रंथों ने स्वीकारा है तथा कहा है कि तिल में जिस प्रकार तेल, दुध में घृत, काठ में अग्नि जिस प्रकार विद्यमान है उसी प्रकार ओंम सभी जगह सुक्ष्म से सुक्ष्म, अणु से अणु तथा विभु से विभु में व्याप्त है। ओंकार से ही सादृश्यता को दर्शाते हुए चेतना को भी सर्वव्यापक कहा गया है। त्रिशिख ब्राह्मण उपनिषद् में कहा है कि जिस प्रकार मानव शरीर के भीतर पंचकोश एक के भीतर एक उपस्थित होते है, ताजे फलों में उसका रस चारों ओर व्याप्त रहता है उसी भॉति मानव की चेतना उसके संपूर्ण शरीर में समाहित रहती है।[16] चेतना सर्वत्र विद्यमान है, चाहे किसी जीव में अथवा सुक्ष्मतम कण में। चेतना ओम ही है। योग वशिष्ठ में वर्णन मिलता है कि '' जिस प्रकार जल में लहरों की चंचलता है। जलते हुए दीपक में प्रकाश किरणों की स्फुरता अग्नि में चिंगारियॉ चंद्रमा में शीतल किरणे, वृक्ष में पुष्प पत्तियों की शोभा है उसी प्रकार सृष्टि के अणु में वही परम चेतना व्याप्त है।'' ओंकार वैदिक प्रक्रिया का मूल है इसका कारण ओंकार से सुक्त सभी क्रियाओं का फलवान होना है।[17]

उपनिषद् चेतना को शुद्ध स्व अथवा चरम सत के गुण के रूप में देखा गया है। तथा चेतना ही व्यक्तिगत स्तर पर स्थूल एवं सुक्ष्म शरीर तथा व्यष्टिगत स्तर पर विराट एवं हिरण्यगर्भ के रूप में उभरती है।[18] मानवीय चेतना को चार रूपों में प्रकट किया है जो विश्व अर्थात जाग्रतावस्था, तैजस अथवा स्वप्नावस्था, प्राज्ञ अर्थात निद्रावस्था, आध्यात्मिक चेतना अर्थात तुरीयावस्था है।[19] तुरीयावस्था आत्मबोध की स्थिति है, यह आत्मा की उच्च अवस्था है, जिसमें अविद्या तथा माया का आवरण पूर्ण रूप से क्षीण हो जाता है।

विमर्श

वर्तमान युग को चेतना के संकट के युग के रूप देखा जा रहा है तथा मानव जिस गति से अपनी चेतना को विकृत करता अथवा खोता जा रहा है उससे परिस्थियॉ विकट से विकटतम होती जा रही है। मानव चेतना के इस गंभीरतापूर्ण संकट के समय से प्रत्येक क्षेत्र के विद्वान, मनीषी, योगी, तथा मुर्धन्यगण चिंतित तथा परिचित है। तथा विशेषज्ञों के द्वारा इस दिशा में प्रयास निरंतर किए जा रहे है। तथा चेतना को सामान्य स्तर से उँचा उठाकर चेतना को परमचेतना में विलीन की स्थिति तक पहुँचने का कार्य

---

[13] नाभिकन्दात्समारभ्य यावद्धृदयगोचरम्।

जाग्रद्वृत्तिं विजानीयात्कण्ठस्थं स्वप्नवर्तनम्।

सुषुप्तं तालुमध्यस्थं तुर्यं भ्रूमध्यसंस्थितम्।। त्रिशिखब्राह्मण उपनिषद्2/149–150।।

[14] मुण्डकोपनिषद 2–7

[15] मण्डलब्राहमणोपनिषद्–2/4/1

[16] सर्वत्र वर्तते जाग्रत्स्वप्नं जाग्रति वर्तते।

सुषुप्तं च तुरीयं च नान्यावस्थासु कुत्रचित्। त्रिशिखब्राहमण उपनिषद 2/10

[17] डॉ. रेणु बाला, ऊँकार एक तात्विक अनुशीलन, दार्शनिक त्रैमासिकी, वर्ष 65, अंक–2, अप्रैल–जुन 2019, पृ 63

[18] Raghunath Safaya, Indian Psychology, Pg 67

[19] माण्डुक्य उपनिषद् 1–5

आध्यात्मिक प्रक्रियाओं के द्वारा ही संभव हो सकता है।[20] वैदिक साहित्यों में वर्णित प्रणव की उपासना से एक ओर जीवनशैली तथा चिंतनशैली में परिवर्तन के साथ भौतिक प्रक्रियाएँ सकारात्मक रूप से प्रभावित होती है वहीं प्रणव उपासना से चेतना रोगमुक्त होती है अर्थात चेतना की विकसित तथा परिष्कृत अवस्था में पहुँचती है।

मानव चेतना की गतिविधियों को योग दर्शन में चित्त की स्थितियों के अनुरूप दर्शाया है तथा चित्त की प्रकृति को त्रिगुणों से युक्त कहा है अर्थात मानव चेतना भी त्रिगुणों के अनुरूप क्रिया करती है। इन तीनों गुणों के आधार पर चित्त अथवा मानव चेतना की पॉच अवस्थाएँ कही जा सकती है तथा ये अवस्थाएँ क्रमशः क्षिप्त, मूढ, विक्षिप्त, एकाग्र तथा निरूद्ध है। रजोगुण की अधिकता से युक्त चित्त चंचल और अस्थिर होता है अर्थात वासनाओं की अधिकता वाले चित्त को क्षिप्तावस्था कहते है। तमोगुण की अधिकता वाला चित्त मोह और आलस्य से जुडा होता है तथा इसे मुढावस्था से युक्त चित्त कहते है। सतोगुण वाला चित्त सिथर मनोभुमि वाला होता है तथा यह चित्त की एकाग्रावस्था है। योग साधना तथा प्रणवोपासना करने से चित्त की सभी वृत्तियॉ रूक जाती है तथा यह अवस्था चेतना की सबसे परिष्कृत अवस्था है इसे निरूद्ध अवस्था कहते है।[21] मानव चेतना ईश्वरीय चेतना का ही एक अंश है। प्रणवानुसंधान कर मानव चेतना को ईश्वरीय चेतना से संयुक्त किया जाना संभव है। प्रणव अर्थात ओम का किसी भी रूपों अर्थात जप, ध्यान, स्तुति, लेखन, प्रार्थना, त्राटक अथवा उपासना करने पर मानव चेतना प्रकाशित होती है।

उपसंहार

प्राचीनकाल में अनेक आध्यात्मिक साधनाएँ उपलब्ध थी, जिसको अवलंबन बनाकर साधक अपनी चेतना को उच्चतम प्रवाह की ओर ले जाता था। परंतु वर्तमान में उन दिव्य साधनाओं कि लिए निर्देशक योग्य गुरू का मिलना मुश्किल प्रतीत होता है। अतः चेतना के विकास के लिए सबसे सरलतम तथा उपयोगी साधन के रूप में प्रणव ही प्रयुक्त होता है। आत्मा के रूप में चेतना तथा प्रणव दोनों ही अविनाशी तत्व है, ये सदैव ही सक्रिय रहने वाले है, अखंड, अद्वितीय तथा अमुर्ति पदार्थ है, सर्वत्र व्याप्त है, अखिल ब्रह्मंड के कण कण में विराजमान है। महाभारत के शांतिपर्व में वर्णन मिलता है कि भाग्य और पुरूषार्थ एक दुसरे से जुडे हुए है तथा खेत में बीज के बिना बोए उसका फल नही मिलता। अतः साधक को अपनी चेतना के विकास के लिए आवश्यक है कि वह साधनाओं का आलंबन ग्रहण कर चेतना के सतत विकास के लिए प्रयासरत रहे। अनेक सिद्ध मुनियों तथा साधकों का मत है कि प्रणव की उपासना चेतना को परिष्कृत करने का सर्वश्रेष्ठ उपाय है।

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. भारद्वाज ईश्वर, मानव चेतना, मानव चेतना प्रकाशन, 2011
2. कुमार कामाख्या, मानव चेतना, ड्रोलिया पुस्तक भंडार, हरिद्वार, 2010
3. पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाडगमय, भविष्य का धर्म – वैज्ञानिक धर्म,, खंड 24, अखंड ज्योति संस्थान, 1998
4. हरिकृष्ण दास गोयन्दका, महर्षि पतंजली कृत, योग दर्शन , गीताप्रेस गोरखपुर, 2005
5. डॉ. रेणु बाला, ऊँकार एक तात्विक अनुशीलन, दार्शनिक त्रैमासिकी, वर्ष 65, अंक–2, अप्रैल–जुन 2019
6. आचार्य, पं. श्रीराम शर्मा (2015),108 उपनिषद् (सरल हिंदी भावार्थ सहित) ज्ञानखंड, साधनाखंड, ब्रहमविधाखंड, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, गायत्री तपोभुमि, मथुरा (उ.प्र.)
7. शास्त्री आचार्य केशव वी., उपनिषद् संचयनम् ईषाद्यष्टोत्तरषतोपनिषदः (भाग–दो, तीन), मोतीलाल बनारसी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015
8. विद्यालंकारा सुभाष, योग उपनिषदः 20 योग उपनिषदों का मूल, विद्यालंकृता हिन्दी व्याख्या एवं

[20] ईश्वर भारद्वाज, मानव चेतना, पृ10

[21] ईश्वर भारद्वाज, मानव चेतना, पृ40

श्लोकानुक्रमणिका सहित, प्रतिभा प्रकाशन, शक्तिनगर, दिल्ली, 2018

9. शास्त्री, पं ए. महादेव, योगोपनिषद्– श्री उपनिषद ब्रहमयोगी की टीका सहित, दि अडयार लाइब्रेरी एण्ड रिसर्च सैन्टर अडयार मद्रास– 20, प्रथम संस्करण 1920

10. बापटशास्त्री, आचार्य विष्णु वामन, सुबोध उपनिषत्संग्रह (भाग पहिला), संस्कृत तथा मराठी, म्यु. डी जोगो प्रकाशन, 2018

11. राणा, भवान सिंह, 108 उपनिषद्, डायमंड पॉकेट बुक्स, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, नई दिल्ली, 1999

12. पेन्ना, मधुसूदन, योगोपनिषद्ः उपनिषद्ब्रह्मयोगी, न्यु भारतीय बुक पब्लिकेशन, 2019

13. शास्त्री, पं. जगदीश, उपनिषत्संग्रह, मोतीलाल बनारसीदास, साँतवा संस्करण, 2017

14. उपनिषत्संग्रहः अष्टाधिकशतोपनिषदसंग्रह, रत्ना पब्लिकेशन वाराणसी, 2003

15. कुञ्जनराज, चि. महाशय, अप्रकाशित उपनिषद्, अड्यार पुस्तकालय, 1933

16. पणषीकर, वासुदेव लक्ष्मण, ईषाद्यष्टोत्तरषतोपनिषदः, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, पुनर्मुद्रित–वि.सं. 2010

17-